ब्रह्मचर्य एक दृष्टि

डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया
एम.ए.,पी.-एच.डी.,डी.लिट्

प्राणधारियों में मनुष्य श्रेष्ठ प्राणी है। इसकी श्रेष्ठता का आधार है अन्य प्रणियोंकी अपेक्षा ज्ञान की प्रकृष्टता। ज्ञान से उत्पन्न शक्ति - विवेक अथवा भेद विज्ञान उत्कृष्ट प्राणियों का प्रमुख लक्षण माना जाता है। मनुष्य में विवेक जागृत होने पर उसकी जीवन-यात्रा उन्मार्ग से हटकर सन्मार्ग की ओर उन्मुख होती है। ब्रह्मचर्य विवेकवान मनुष्य द्वारा अनुपालन किया जाता है।

मन से, वचन से और काय-कर्म से समस्त इन्द्रियों का संयम करने का नाम वस्तुत: ब्रह्मचर्य है। गुप्ति पूर्वक इन्द्रिय संयम होने पर आत्मिक गुण ब्रह्मचर्य मुखर हो उठता है। किसी एक के साथ संयम बरतने से ब्रह्मचर्य की पूरर्तता सम्भव नहीं। इसके लिए इन्द्रियों के विषय में सावधानी पूर्वक विचार करना आवश्यक है।

इन्द्रिय शब्द के मूल में शब्दांश है इन्द्र। इन्द्र शब्द के अनेक अर्थ हैं। इन्द्र शब्द का एक अर्थ है आत्मा। जो आत्मा के परिचायक हैं उन्हें कहते हैं - इन्द्रियाँ। इन्द्रियों के द्वारा आत्मा के अस्तित्व का अवबोध किया जाता है। इन्द्रियोंका परिवार पाँच रूपों में विभक्त है — कर्ण, चक्षु, नासिका, जिह्वा तथा स्पर्श। यह विभाजन अन्त: और बाह्य दो प्रभेदों में बाँटा गया है। इन भेदों का उपयोग मन के माध्यम से किया जाता है। मन इन्द्रिय वस्तुत: मनुष्य की अतिरिक्त इन्द्रिय है। इस प्रकार एकादश इन्द्रियों का धारी मनुष्य भव-भ्रमण और भव-मुक्ति में से किसी एक का निर्वाचन करता है। जब वह भव-भ्रमण में रुचि रखता है तब काम और अर्थ पुरुषार्थों का सम्पादन होता है। भव-मुक्ति के लिए धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ सम्पन्न करना होता है। इसके लिए ब्रह्मचर्य की साधना आवश्यक है।

पुरुषार्थों काम, अर्थ, धर्म, मोक्ष के सम्पादन के लिए 'मैथुन' शब्द की भूमिका वस्तुत: उल्लेखनीय है। काल और क्षेत्र के आधार पर किसी शब्द का अर्थ-अभिप्राय में यथेच्छ परिवर्तन होता रहता है। 'मैथुन' शब्द का अर्थ भी गिर गया है। मैथुन शब्द का आज आम अर्थ भोग-सम्भोग के लिए किया जाता है, जबकि मैथुन शब्दका मूलत: अर्थ है - युग्म, जोड़ा, किसी दो का योग। मैथुन शब्द का यह अर्थ-साधना और आराधना के सन्दर्भ में मान्य है। और है वासना के प्रसंग में भी गृहीत। उपादान और निमित्त युग्म है। यह दो शब्दों का मैथुन/युग्म है। अगर ये दोनों शब्द नहीं जगे तो साधना सम्पन्न नहीं हो पाती। मैथुन आवश्यक है।

आत्मा और इन्द्रियों का जब बहिरंग प्रयोग सम्पन्न होता है तब इन्द्रियों के बाहरी द्वार खुलते हैं तभी संभोग प्रक्रिया का प्रवर्तन होता है। इन्द्रियों के बाह्य व्यापार प्राणी को शाश्वत तृप्ति प्रदान नहीं करते। इस योजना में तृप्ति की शक्ति ही नहीं है। जब आत्मा इन्द्रियों के अंतरंग प्रयोग में प्रतिष्ठित होता है तब वस्तुत: योग का जन्म होता है और तब उत्तरोत्तर उपयोग जगा करता है। उपयोग ब्रह्मचर्य का पहला चरण है। अगर उपयोग नहीं जगा, तो डिग्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो सकती है, स्वरूपाचरण के दर्शन नहीं हो सकते। उपयोग, शुभ उपयोग में परिणत होगा, शुभ शुद्ध में परिणत होगा, ब्रह्मचर्य तब चरितार्थ हो जाएगा।

उपयोग जागरण के लिए जीवन में श्रम साधना की आवश्यकता असंदिग्ध है। शरीर के साथ किया गया श्रम मजूरी को जन्म देता है, बुद्धि के साथ किया गया श्रम कारीगरी को उत्पन्न करता है और हृदय के साथ किया गया श्रम कला का प्रवर्तन करता है। जीवन जीना एक कला है। यही कला जीवन को बनाने की कला है। इसी का अपर नाम है. आचार, चरित्र। चरित्र अर्थात् नैतिक शक्ति, यदि नैतिक शक्ति का विकास होता है तो वह आत्मा का विकास है, जीवन का विकास है।

ब्रह्मचारी सदा स्वावलम्बी होता है उसके लिए जागतिक पर पदार्थों के आकर्षण निरर्थक हो जाते हैं। उसकी आत्मा में सौन्दर्य का जागरण होता है। तब उसे सारा जगत सौन्दर्यमय दिखाई देता है। उसके लिए विनाशीक औदारिक शरीर का कोई मूल्य नहीं है और इसका कारण है उसमें शील का उजागरण। शीलजागरण प्राणी में समत्व को जगा देता है। फलस्वरुप वह यशस्वी बनता है, वर्चस्वी बनता है, और बनता है तेजस्वी।

जैन शास्त्रों में उत्तराध्ययन सूत्र का विशेष महत्व है। इस ग्रंथ में ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए जो नियम-उपनियम निर्धारित किए हैं वे उल्लेखनीय हैं। किसी खेत में खड़ी खेती की रक्षा के लिए 'बाड' की आवश्यकता असंदिग्ध है, उसी प्रकार शील संरक्षण के लिए कतिपय नियमों का अनुपालन आवश्यक है। यथा

१ - ब्रह्मचारी स्त्री पशु एवं नपुंसक - सहित मकान उपयोग नहीं करता।

२ - स्त्री-कथा नही करता है।
३ - स्त्री के आसन एवं शय्या पर नहीं बैठता है।
४ - स्त्री के अंग एवं उपांगो का अवलोकन नहीं करता है।
५ - स्त्री के हास्य एवं विलास के शब्दों को नहीं सुनता है।
६ - पूर्व सेवित काम - क्रीडा का स्मरण नहीं करता है
७ - नित्य प्रति सरस भोजन नहीं करता है।
८ - अतिमात्रा में भोजन नहीं करता है।
९ - विभूषा एवं शृंगार नहीं करता है।
१० - शब्द, रुप, गंध, रस और स्पर्श का अनुपाती नहीं होता है।

यदि इन सभी बातों का कोई साधक उपयोग संकल्पपूर्वक करता है तो वह अपने में ब्रह्मचर्य धर्म लक्षण को जगा सकता है। शीलवान को अपनी इन्द्रियों पर अपने मन पर और अपनी बुद्धि पर संयम रखना आवश्यक हो जाता है।

एक जीवनवृत्त का स्मरण होना हुआ है। आदिवासियों की बस्ती में मेरा जाना हुआ। उनका आधा शरीर नंगा रहता है। महिलाएँ कुछ विशेष वस्त्र धारती हैं। अधो अंगो को पत्तो से, छालों से वे ढक लेती है, शेष नग्न शरीर रहती है। शिष्ट मण्डल के सभी सदस्य सम्भ्रान्त थे। उनमें से एक नेता तन से साफ थे, सुथरे थे किन्तु मन से मैले थे। मनचले थे। आदिवासियों ने अभ्यर्थना में नाना प्रकार के आयोजन किए। वे सभी आकर्षक थे। कलापूर्ण थे। कला जागे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो वे अच्छे लगें। मेरे मन नें उन्हें साधुवाद दिया। संस्कृति का आदान-प्रदान हुआ।

आदिवासियों की एक युवती थी, ताजी तरुणी। उसके अंग-प्रत्यंग उभरे थे। नेताजी का मन उस पर चलवाया। चंचल था, सधा नहीं, वैसे वे सदयात्री थे। वह व्यक्ति उस युवती के पास जाता है और उसके उन्नत पयोधरों को देखकर उससे पूछता है ये क्या है? और यह जानकर आपको आश्चर्य होगा, नेताजी की आँखे तो खुल ही गईं। वह आदिवासिनी कहती है दूधदानी हैं। बच्चों को दूध पिलाने की मशीन है। धन्य है वह साध्वी जिसने अपने अंग-प्रत्यंग के उपयोग पर ध्यान दिया। आज सभ्य कहलानेवाले महापुरुष अपने अंगो के उपयोग में भी अनुपस्थित है। आत्मिक उपयोग की बात हम करते हैं। मेरी भावनाएँ कितनी कुत्सित हैं, भ्रष्ट हैं। उस निरक्षर वन वासिनी से सीख लें, जिसका उपयोग पक्ष कितना सजग है जिसका उपयोग पक्ष कितना विवेकवान है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है -

इत्थीण चित्तंसि निवेसइत्ता,
दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी।

अथति तपस्वी श्रमण (साधक) स्त्रियों के रुप लावण्य, विलास, हास-परिहास, भाषण-संभाषण स्नेह, चेष्टा अथवा कटाक्षयुक्त दृष्टि को अपने मन में स्थान नहीं देता तथा उसे देखने तक का प्रयास नहीं करता है।

जिस आदमी का जीवन ब्रह्मचर्य से व्याप्त हो जाता है, वह आदमी दूसरों के लिए नहीं, अपितु अपने लिए भला आदमी बनता हैं। और उसका अन्तरंग अखण्ड आनन्द से आलावित हो उठता है। उसके हर चरण में विनम्रता, प्रामाणिकता, शील और सौजन्य की सुगंध विकीर्ण होती हैं। वह चरण सदाचरण में परिणत होता है तब जीवन में अन्ततः मंगलाचरण का प्रवर्तन होता है।

गृहस्थ जीवन में ब्रह्मचर्यका अनुपालन आंशिक रुप से करने का विधान है जबकि श्रमण - साधु उसका पूर्ण रुप से अनुपालन कर संयम; खलु जीवन को चरितार्थ करते है। अणुव्रती होकर हम अपनी चर्या को यथाशक्ति संयमित कर आदर्श की स्थापना कर सकते हैं। आज का जन-जीवन प्रायः नियमों-उपनियमों की अवहेलना करता हुआ दुःख संधातों से जूझ रहा है। जीवन में सुख और शान्ति का संचरण होने के लिए हमें हमारी चर्या में शीलता, समता और कर्मण्यता के संस्कार जगाने होंगे।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य आत्मिक गुणों में से एक गुण/लक्षण है। इसके प्रकट होने से उसकी सुरक्षा होनेसे जीवन में अद्भूत शक्ति, ओज और आभा का संचरण होता है और होता है शारीरिक अंगो में लावण्यता और कार्यशीलता में अभिबर्द्धन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org